पूजा के त्रिविध भेद

सृष्टि में दो प्रकार के साधक दृष्ट होते हैं, जो उपासक इस जगत में बाह्य रूपों पर सानुराग आसक्त रहता है, वह स्वीकार करेगा कि यह दृश्य यथार्थ है। जो आध्यात्मिक विद्या का विद्वान् उपासक विचारों पर अवलम्बित रहता है, वह अदृश्य पदार्थों की मान्यता स्वीकार करता है। तथ्य यह है कि दृश्य अदृश्य की देहली अथवा द्वार है अर्थात् मूर्ति एक संचालक पवित्र स्थान तीर्थ) तथा चिह्न और एक प्रकार का ध्वज स्तम्भ है और **शरीर आत्मा का मन्दिर है।** यास्काचार्य कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु की व्याख्या (अर्थ विचार) तीन

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान
दूरभाष: 9044016661

मियमों के अनुसार हो सकती है अर्थात् आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक नियम दृष्टिकोण से की जा सकती है तथा इन दृष्टि कोणों में परस्पर विरोध आ जाने के लिए कोई युक्ति-युक्त कारण नहीं है। यह केवल अनन्त परमेश्वर है, जो अपरा प्रकृति के स्वरूप में है और परा-प्रकृति उसमें प्राण-सञ्चालन का काम करती है। परा-पूजा, परापरा-पूजा और अपरा-पूजा में उचित रीति से निम्न-लिखित भेद दर्शित है

जो उपासक परमेश्वर को विषय-आश्रित वास्तविकता के रूप में पहचानता है अर्थात् परमात्मा को अपने से भिन्न समझता है, वह अपरा पूजा को प्रिय मानता है। अपरा पूजा

के उपासक को परमात्मा को अपने मनोनिष्ठ माननेवाले परा-पूजा के उपासक के लिए भला-बुरा नहीं कहना चाहिए, यतः उसका मन परमात्मा का मन्दिर है और परमात्मा उसके हृदय-मन्दिर में हैं।

परा चाप्यपरा गौरी, तृतीया च पराऽपरा।

प्रथमाऽद्वैत-भावस्था, सर्व-प्रचय-गोचरा।

मन्त्र, यन्त्र (चक्र) और पूजा के भेद से **श्रीविद्या का स्वरूप तीन प्रकार का है। अपनी पवित्रता में पञ्च-दशाक्षरी मन्त्र और गायत्री मन्त्र का समान महत्त्व है, किन्तु पञ्च-दशाक्षरमन्त्र गायत्री मन्त्र की अपेक्षा अधिकतर गुप्त रखा गया है।** ग्रन्थ-कार कहता है तथा दर्शाता भी है कि पञ्चदशी-मन्त्र में वही सत्य भरा हुआ है, जो **'तत्त्वमसि',**'

अयमात्मा ब्रह्म' और **'अहं ब्रह्मास्मि'** इत्यादि महा-वाक्यों में है। श्रीचक्र **'परा'** और **'अपरा'** प्रकृति का प्रतिरूप है और परमात्मा की शक्ति दोनों प्रकृतियों में प्राण-शक्ति का सञ्चार करती है। कामेश्वर और कामेश्वरी (श्रीललिता) बिन्दु-चक्र को अपनी स्थिति से आत्म-शक्ति प्रदान करते हैं, जो (बिन्दु-चक्र) संसार-चक्र का केन्द्र है। मनुष्य का मस्तिष्क सदा शरीर से एकता स्थापित करने के लिए तथा विश्व को अहङ्कार से ग्रहण करने के लिए उद्यत रहता है, किन्तु यदि हम मानसिक केन्द्रों को इनसे हटाकर परमात्मा में लगाएँ, तो हम यह अनुभव कर सकते हैं। आत्मा और संसार परमात्मा के प्रकाश हैं-**ईशावास्यमिदं सर्वम्।**

श्रीचक्र-पूजा हमको उक्त अनुभव की ओर ले जाएगी। इसका प्रारम्भ बाह्य पूजा से करना चाहिए और अनन्तर में यह पूजा आन्तरिक

अनुभव में परिणत होकर नित्य अनन्त महदानन्द को प्राप्त हो जाती है। ग्रन्थ-कर्ता प्रतिपादित करता है कि पाप और वासनाओं के कारण महावाक्योपदेश सिद्धिप्रद नहीं होता है, तो श्रीविद्योपासना का अभ्यास अवश्यमेव करना चाहिए।

'दीक्षा'-परमात्मा और मनुष्य के मध्य एक सम्बन्ध है और दीक्षा प्रभावोत्पादक प्रकार से गुरु द्वारा ही दी जा सकती है-

दीयते शिव-सायुज्यं, क्षीयते पाश-बन्धनम्।

अतो दीक्षेति कथितं, बुधैः सच्छास्त्र-वेदिभिः ॥

शाक्त मत के अनुसार ३६ तत्त्वों (संसार के पदार्थों) का विश्लेषण परिव्यक्त और व्यापक है। षट्-त्रिंशत् तत्त्व निम्न-लिखित प्रकार हैं

१.आत्म-तत्त्व

आत्मतत्व चौबीस (२४) हैं, अर्थात् पाँच स्थूल तत्त्व (स्थूल का कारण), पाँच तन्मात्राएँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन (जिसमें तमोगुण की अधिकता होती है), अहङ्कार (रजोगुण-प्रधान), बुद्धि (जिसमें सत्त्व गुण की प्रबलता होती है) एवं प्रकृति (जिसमें तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं)। इन तत्त्वों से शरीर बनता है। **'पुरुष'** मन के साथ सम्बन्ध करनेवाला ' जीव' कहा गया है। यही **'जीव'** कर्ता और भोक्ता होता है। कर्ता और कर्म-इन दो का कारण केवल 'माया' है। ये २४ तत्त्व अशुद्ध तत्त्व' कहलाते हैं।

२. विद्या-तत्त्व

सात (७) हैं, अर्थात् माया, पाँचकञ्चुक (आवरण) और पुरुष १.कला, २.अविद्या, ३.राग, ४.काल और ५.नियति-इन पाँच कञ्चुकों (आवरणों) द्वारा 'माया' कार्य करती है और उक्त पाँच कञ्चुक क्रिया-शक्ति, ज्ञान-शक्ति, इच्छा-शक्ति, चित्-शक्ति और आनन्द-शक्ति को क्रमशः आच्छादित करते हैं अर्थात् मलिन बना देते हैं। शुद्ध-विद्या इन आवरणों को दूर करती है। ये सात तत्त्व 'शुद्धाशुद्ध' कहलाते हैं।

३. शिव-तत्त्व पाँच हैं-१.शुद्ध-विद्या, २. ईश्वर, ३. सदा-शिव। ४. शक्ति और ५. शिव। ये' ',शुद्ध तत्त्व' कहे जाते हैं। इनमें से' शुद्ध विद्या' विश्व और आत्मा तथा परमात्मा का भेद-भाव दूर कर देती है। ईश्वर-तत्त्व जगत्-सम्बन्धी ज्ञान

(संविद्) है। सदा-शिव-तत्त्व अनन्त (अपरिमित) आनन्द-मय आत्म-ज्ञान (आत्म-संविद्) है। शक्ति शिव की 'रचना करनेवाली (उत्पादक) इच्छा है। शिव स्वाधीन है, जो शक्ति के साथ एक है।

ऊपर कहा गया विश्लेषण पदार्थ-क्रम को माननेवाले सांख्य-दर्शन और सामान्य वेदान्त-दर्शन से अति उत्तम है। सांख्य-दर्शन परस्पर-विरुद्ध द्वैत-भाव से परिपूर्ण है तथा उस उच्चतर दृष्टिकोणपर्यन्त पहुँचने के लिए असमर्थ है, जहाँ कर्ता और कर्म दोनों ही विलीन हो जाते हैं। अद्वैत-मत में आवश्यकता है, जितनी पूजा की **'बाह्यसामग्री'** की आवश्यकता नहीं, पूर्वोक्त वस्तुएँ 'बाह्यसामग्री' से अधिक-तर आवश्यक हैं।

श्रेयान् द्रव्य-मयाद्यज्ञात, ज्ञान-यज्ञः परन्तप!

ज्ञान-यज्ञोडुपेनैव, ब्राह्मणो वाऽन्त्यजोऽपि वा ।।

संसार-सागरं तीर्त्वा, मुक्ति-पारं हि गच्छति ॥

(गीता, ४.३३)

भावनोपनिषद् की दृष्टि से ' परा-पूजा-भावना -विमर्शन' उच्चतम श्रेणी की ' पूजा' का परिणाम है। इसी का दूसरा नाम श्रीविद्योपासना' है। यह (श्री-विद्योपासना) 'आत्मा' का ब्रह्म के साथ एकता के सम्पादन' का लगातार 'अभ्यास' करना है। **'पूजा'- १. परा (उत्तम), २. अपरा (साधारण) और ३. परापरा (मध्यम) भेद से तीन प्रकार की है**

परा चाप्यपरा गौरि ! तृतीया च परापरा।

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान
दूरभाष: 9044016661

प्रथमाऽद्वैत-भावस्था, सर्वप्रचयगोचरा ॥

(योगिनी-हृदय, ८.२३)

'पूजा' का सबसे बड़ा स्वरूप, जिसमें किसी प्रकार की द्वैत-भावना का चिह्न नहीं है अर्थात् जहाँ पर प्रत्येक विचार, शब्द' अथवा ' अर्थ' स्वयं पूजा है, **'परा-पूजा'** नाम से कहा जाता है। पूजा के जिस प्रकार में अद्वैत-भाव का कोई चिह्न नहीं है और पूजक (उपासक) बाह्य चक्र एवं मूर्ति को अपने से भिन्न समझकर उसकी पूजा करता है, वह **'अपरा पूजा'** के अभिधान से प्रसिद्ध है। जिस पूजा के प्रारम्भ में अनुभव की गई द्वैत-भावना का निरन्तर ऐक्य-ध्यान से शनैः शनैः एकता में विलय किया जाता है, वह **'परापरा'** नाम की पूजा मानी गई है।

द्वैत-भान-सामान्या भावे 'परा',
अद्वैत-भान-सामान्या भावे 'त्वपरा'।
द्वैतविलयाभ्यासदशायां, परापरेति पूजा त्रयलक्षणानि ॥

सपर्या सर्व-भावेषु, सा ' परा' परिकीर्तिता।
'अपरा' तु बहिर्वक्ष्यमाण-चक्रार्चना-विधिः ॥
'परापरा'ऽस्य बाह्यस्य, चिद्-व्योम विलयः स्मृता।
इत्थं त्रिधा समुद्दिष्टा, बाह्याभ्यन्तर-भेदतः ॥

सौन्दर्य-लहरी के निम्न-लिखित २७ वें पद में भगवान् शङ्कराचार्य जी ने परा पूजा करनेवाले उपासक की.'मनोवृत्ति' प्रत्येक विचार को पवित्र करनेवाली बतलाई है और दिखलाया है कि उपासक अपनी दिन चर्या, विचार, शब्द और कर्म को उपहार के स्वरूप में निरन्तर परा पूजा में निवेदन करता रहता है अर्थात् परा पूजा करनेवाला अपनी दिनचर्या

को जगदम्बा की भेंट में समर्पण कर देता है।

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्रा-विरचना,
गतिः प्रादक्षिण्यं क्रमणमशनाद्याहुति-विधिः।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पण-दशा,
सपर्या-पर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ॥

अर्थात् हे माता! मेरी बातें तुम्हारे मन्त्र-जप में, मेरे कार्य-जिन्हें मैं अपने हाथों से सम्पादित करता हूं, वे कार्य तुम्हारे मुद्रा-प्रदर्शन में, मेरा गमन तुम्हारी परिक्रमा में, भोजन और पान आहुति-प्रदान में, लेटना साष्टाङ्ग प्रणाम में, मेरे समस्त सुख आत्म-समर्पण करने में और इसके अतिरिक्त जो भी मैं करता हूँ, वह सब तुम्हारी पूजा में परिणत हो। निम्न-लिखित पद्य में भी यही विचार दर्शाया गया है

**आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचरा प्राणाः शरीरं गृहं,
पूजा ते विषयोपभोग-रचना निद्रा समाधि-स्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिण-विधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो! तवाराधनम् ॥**

योग-शास्त्र इस 'परापूजा' की अवस्था को ऋतम्भरा प्रज्ञा कहता है अर्थात् जिस अवस्था में दृश्य वस्तुओं को पहचाननेवाली उपासक (पूजक) की ज्ञानेन्द्रियाँ अपनी दृश्य वस्तुओं के नाम और रूप को त्याग कर उनके (दृश्य पदार्थों के) वास्तविक निष्कर्ष (असली निचोड़) सच्चिदानन्द को ग्रहण करती हैं, वह अवस्था ऋतम्भरा प्रज्ञा के नाम से कही जाती है। इस प्रकार की 'परा पूजा' (उत्कृष्ट पूजा) में सबसे अधिक भाग 'मन' के द्वारा दिया जाता है अर्थात् 'मन' से सम्पादित होती है। अतएव यह 'पूजा' स्पष्टतया थोड़े से ही निपुण

उत्तमाधिकारियों द्वारा सम्भव हो सकती है अर्थात् 'मन' के द्वारा' सम्पादित' की जानेवाली 'परापूजा' को कतिपय उत्तमाधिकारी ही कर सकते हैं

"सर्वेन्द्रिय-जन्येषु ज्ञानेषु ये विषयास्तेषु सच्चिदानन्दांशस्यानुगतस्य भानं, न त्वनुगतयोर्नामरूपयोः। इदम् ऋतम्भराज्ञानमिति प्रसिद्धम्। सा पूजा 'परा'नाम्नीति कथ्यते।"

योग्यता-क्रम के अनुसार **'परापूजा'** के अनन्तर **'परापरा'** पूजा आती है। यहाँ पर **'अपरा पूजा'** करनेवाले उपासक का यह विचार है कि वह संसार से भिन्न नहीं है और गुण तथा दोषों की विवेचना करनेवाले **'मन'** के द्वारा आन्तरिक जगत्' अपने आप शनैः शनैः शुद्ध हो जाता है। प्रारम्भिक विशेषताएँ रखनेवाले 'मध्यमाधिकारी' उपासक के लिए इस प्रकार

की मानसिक उन्नति की दशा सम्भव हो सकती है। 'ब्रह्म' के साथ अपनी (मध्यमाधिकारी की) 'एकता' का निरन्तर चिन्तन करना पृथकता के भाव का नाशक है। 'मनन' और 'निदिध्यासन' अर्थात् 'निरन्तर चिन्तन' ही उचित समय पर 'मध्यमाधिकारी' उपासक को 'परा पूजा' करनेवाले 'उत्तमाधिकारी की अवस्था में पहुँचने के लिए समर्थ बना देता है। परापरा पूजा का स्वरूप यथोचित रीति से बनाने के लिए 'पूजा' और 'पुष्पादि के समर्पण' की तुलना यज्ञ में घृताहुति के दृष्टान्त द्वारा की गई है अर्थात् जिस प्रकार यज्ञ में आहुतियाँ दी जाती हैं, उसी प्रकार पूजा में गन्धाक्षत, पुष्प आदि अर्पित किए जाते हैं-

प्रकाशैक-घने धाम्नि, विकल्पान् प्रसवादिकान्।

निक्षिपाम्यर्चन-द्वारा, वह्नाविव घृताहुतीः॥

अन्तिम पूजा 'अपरा पूजा' है। यह केवल उपासक के सम्मुख स्थित किसी चक्र (यन्त्र) अथवा प्रतिमा की पूजा है। इसके लिए पद्धति के अनुसार आवश्यक सामग्री एकत्रित की जाती है और वह उचित मन्त्रों द्वारा विधि-पूर्वक मूर्ति अथवा यन्त्र को समर्पित की जाती है। इस 'पूजा' का निर्देश अर्चना प्रारम्भ करनेवाले (अभ्यासी) 'मन्दाधिकारियों के लिए किया गया है-

अपरा तु बहिर्वक्ष्यमाण-चक्रार्चना-विधिः॥

'पूजा' यजन अथवा यज्ञ है। उसी को संपर्या अथवा पूजन कहते हैं और इसी का नाम 'उपासना' अथवा 'निरन्तर ध्यान' भी कहा जाता है। श्रीविद्या की प्राप्ति-ब्रह्मात्मैक्य-प्रसिद्ध उपासना का लक्ष्य-ब्रह्म के साथ आत्मा की एकता की प्राप्ति (ब्रह्मात्मैक-चिदुपास्ति) है।

इस उपासना के घटक (निर्माता)-१. नियम व मन्त्र २. प्रतिमा अथवा यन्त्र और ३. वैधिक (विध्यनुकूल) किंवा पूजा-विशेष-ये तीन अङ्ग हैं अर्थात् इस उपासना के १.मन्त्र, २. यन्त्र और ३. पूजा-ये तीन अवयव हैं। जिस प्रकार वाक्य की रचना करनेवाले पद-समूह का अर्थ समझे बिना वाक्यार्थ अवगत नहीं होता है, उसी प्रकार जब तक 'उपासना के अवयवों (अङ्गों) का अर्थ न समझा जाए, तब तक सम्पूर्ण उपासना' के अङ्गों के अर्थ का ज्ञान होना भी कठिन है। अत: सबसे प्रथम हमें उपासना के तीन अङ्गों के आध्यात्मिक अर्थ की जिज्ञासा करना नितान्त आवश्यक है। यत:हम समस्त उपासना का अर्थ-ब्रह्म का निरन्तर ध्यान करना (अखण्डानुसन्धान) समझ सकें।